ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-1*February- 2018
Innovation The Research Concept

साम्प्रदायिक सद्भाव के परिप्रेक्ष्य में आजाद भारत के विभाजन पर केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों की प्रासंगिकता

मंजुला
असिस्टेंट प्रोफेसर
शिक्षा शास्त्र विभाग,
इस्लामिया टी. टी. (बी. एड.)
कॉलेज, फुलवारीशरीफ,
पटना

सारांश

सांप्रदायिक सद्भाव समाज कल्याण के उद्देश्य पर आधारित एक सामाजिक अभिप्रेरित आयोजन की अवधारणा है। सामाजिक अभिप्रेरित आयोजन अर्थात Social Telesis इस अवधारणा का प्रयोग लेस्टर एफ. वार्ड ने इस विचार की अभिव्यक्ति के लिए किया कि सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जिस प्रकार भौतिक विश्व को नियंत्रित करना संभव है, उसी प्रकार सामाजिक उद्देश्यों के लिए सामाजिक विष्व को भी नियंत्रित किया जा सकता है। जब–जब समाज में असंतोष, तनाव, अविष्वास, असुरक्षा एवं अराजकता की व्याधि फैलती है, तब–तब सामाजिक समूहों में मतभेद की खाई मनभेद को जन्म देती है। मतभेद और मनभेद का यूकोलिप्टस इंसानी जज्बातों को बंजर बना देता है। आपसी सरोकार की नदी सुखने लगती है। जाति, धर्म, आस्था, विश्वास, मूल्य सभी मतों की जमीं खिसकने लगती है और तब बढ़ती है सांप्रदायिक विचारधारा जो जाति, जन्म, धर्म और आस्था के आधार पर एक इंसान को दूसरे इंसान को शत्रुता का रिश्ता कायम करने को जायज ठहराती है।

मुख्य शब्द : सांप्रदायिक सद्भाव, सामाजिक अभिप्रेरित आयोजन, वैश्विक समाज में तनाव, सौहार्द्र, साहित्य, उपन्यास।

प्रस्तावना

वर्त्तमान समय में विश्वस्तर पर और राष्ट्र स्तर पर सामाजिक समूहों में तनाव बढ़ता जा रहा है। समाजशास्त्र के विश्वकोष में यह बताया गया है कि सामाजिक समूहों में दलित संघर्ष, मतभेद तथा विरोध के फलस्वरूप उत्पन्न भावात्मक स्थिति सामाजिक तनाव का द्योतक है। यह तनाव और संघर्ष सामाजिक नियंत्रण द्वारा कम किया जा सकता है।

उद्देश्य

वर्त्तमान दौर ''दौड़ में आगे निकलने की होड़'' का है। पहले हम 'वसुधैव कुटुम्बकम' की बात करते थें। आज हम 'वैश्विक ग्राम' की बात करते हैं। यूँ तो सामान्य विचारधारा उपरोक्त दोनों संदर्भों में एक ही दिशा की ओर उन्मुख है– सबों को जोड़ना। किन्तु यदि सूक्ष्म धरातल पर चिंतन करें तो हम यह पाते हैं कि 'वसुधैव कुटुम्बकम' भावगत कल्पना है और 'वैश्विक ग्राम व्यवस्थागत दृष्टिकोण है।'

ठीक इसी प्रकार 'सांप्रदायिक सौहार्द्र' की कल्पना एक आदर्श मूल्य के प्रति भावगत मानसिकता की बात करता है। इन मानसिकता को प्रेरित एवं प्रभावित करनेवाले कारक सांप्रदायिक सौहार्द्र की 'व्यवस्था' बनाने के घटक माने जा सकते हैं। इन्हीं घटकों में एक प्रमुख घटक है–सांस्कृतिक–साहित्यिक अभिव्यक्ति।

ज्ञान–विस्फोट एवं संचार क्रांति के इस युग में साहित्य मनुष्य के सृजनात्मक एवं संवेदनात्मक क्षमता को सर्वाधिक प्रभावित करता है। इसलिए समस्त अनुसंधान संबंधित साहित्य के अध्ययनोपरांत प्रारंभ होता है।

आज हमारे देश भारत में विकास के सपने और षड्यंत्र का द्वन्द्वयुद्ध चल रहा है। आज राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का संकल्प सांप्रदायिक दुर्भावना के कारण डगमगा रही है। इस कारण आवश्यकता इस बात की है कि हम 'सांप्रदायिकता की मानसिकता' को हीं पनपने नहीं दें। इस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत औपन्यासिक वृतान्त सांप्रदायिकता की मानसिकता के विरूद्ध एक शीतयुद्ध है।

सांप्रदायिक सद्भाव की विचारधारा सामाजिक नियंत्रण का महत्वपूर्ण साधन है। वर्त्तमान समय में विषेष रूप से हमारे देश भारत में सांप्रदायिक वैमनस्य की विचारधारा को बढ़ावा देकर राष्ट्र की एकता, अखण्डता एवं सौहार्द्र की भावना को आहत करने की पुनः कोषिष की जा रही है। कितनी विडम्बना

की बात है कि हमारा भारत, जहाँ 3 हजार जाति एवं 25 हजार जनजातियाँ हैं, जहाँ अनेक धर्म एवं परम्पराएं साथ–साथ रहकर विष्व को भाईचारे का संदेश देती हैं; वहीं माँ भारती के गर्भ से उत्पन्न दो ज्येष्ठ सहोदरों–हिन्दु और मुसलमान–में वैमनस्य को स्थायी रूप से स्वीकार कर लिया है। यह वैमनस्य कितना बेबुनियाद, खोखला एवं अंग्रेजों द्वारा आरोपित था। इसका साक्ष्य हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी की रचनाओं में स्पष्ट बिखरे पड़े हैं। हिन्दी के विभाजनोत्तर उपन्यासों की प्रासंगिकता उपरोक्त संदर्भ में बढ़ जाती है। हम भुक्तभोगी एवं तटस्थ लेखकीय संवेदनाओं में भी इस बात का प्रमाण महसूस लेते हैं कि जब धर्म के आधार पर देश को जमीन बांटी जा रही थी, तब भी यह फैसला दोनों जातियों की आम जनता को आहत कर रही थी। उपन्यास के हिन्दु और मुसलिम पात्र इसके गवाह हैं कि वह हिन्दू तो हैं और मुसलमान भी; परन्तु सिर्फ अपनी परम्पराओं में। आस्थाओं और मूल्यों में वे सब के सब सिर्फ भारतीय हैं; एक ऐसे भारतीय जो भारत की एकता और अखण्डता पर आघात पहुँचाने वाली हर विचारधारा को अस्वीकृत व वहिष्कृत करते हैं। निःसंदेह हिन्दी उपन्यासों का यह दौर सांप्रदायिक सद्भाव को जन्म देने एवं शाष्वत बनाये रखने में कालजयी सिद्ध हुई है।

संप्रदायिक सद्भाव के अवधारणा की उत्पत्ति अप्रत्यक्ष सांप्रदायिक वैमनस्य के समस्या की ओर हमारा ध्यानाकर्षित करती है। सांप्रदायिक वैमनस्य आज के वैज्ञानिक एवं संचार युग में भी सामाजिक विघटन का एक प्रमुख कारक है। सामाजिक विघटन को स्थिति को व्याख्यायित करते हुए न्यूमेयर ने बताया है कि–

''जब समूह का ऐकमत्य तथा उसके उद्देश्यों की एकता भंग हो जाए, सामाजिक संरचना का संतुलन अस्त व्यस्त हो जाए और समाज के क्रियाशील संबंध टूट जाये, तो यह मानना चाहिए कि सामाजिक विद्यटन के लक्षण उपस्थित हो गए हैं।''[1]

वर्तमान वैश्विक समाज सामाजिक विघटनकारी तत्त्वों एवं कारकों से भयभीत है। जल, जंगल, जमीन और जीवन को सुरक्षित रखने के लिए एकबार फिर पुरे विश्व में भारत की धरती से निकले 'विश्वशांति का मूल्य' स्थापित करने की बात की जा रही है। इसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर आज हमारे देश में भय, भूख और भ्रष्टाचार की स्थिति कायम है। जातीयता, प्रांतीयता, सांप्रदायिकता, भाषायी अलगाव, धार्मिक उन्माद आतंकवाद, बेरोजगारी, नैतिक मूल्यों में गिरावट, राजनैतिक भ्रष्टाचार, कदाचार, व्याभचार, हड़ताल, परस्पर वैमनस्यता इत्यादि अनेक समस्याओं से भारतीय समाज युद्ध कर रहा है। ऐसे माहौल में सांप्रदायिक सौहार्द का विमर्ष प्रासंगिक ही नहीं; भजन और अजान की तरह मानव समाज के लिए 'थॉट इनर्जी' है। कितना घातक और नकरात्मक चिंतन का प्रतिक है, यह एक शब्द 'सांप्रदायिक', जो जन्म, जात, प्रांत, धर्म और आस्था के नाम पर समाज में एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से नफरत करना सीखाता है– इसका संपूर्ण आंकलन व चित्रण संभव नहीं है। किन्तु हर नफरत का जहर 'प्रेम' से कम किया जा सकता है,यह सत्य साबित हो चुका है। अतः राष्ट्रीय सौहार्द को अक्षुण्य रखने के लिए सांप्रदायिक सद्भाव को बनाये रखना निहायत जरूरी है।

भारत में हिन्दी–साहित्य की समस्त विधाओं में इसका चित्रण है। विशेषकर विभाजन पर आधारित कथा–साहित्य में सांप्रदायिक वैमनस्य का नृषंस चित्रण भी देखने को मिलता है; तो सांप्रदायिक सद्भाव का प्रेरक प्रसंग भी। स्वतंत्रायोत्तर हिंदी उपन्यास में चर्चित कुछ उपन्यासों की चर्चा उपरोक्त संदर्भ में प्रासंगिक होगी।

यदि 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में सोचें, तो हम पाते हैं कि आतंकवाद एक ऐसी सार्वभौमिक समस्या है जो सबसे ज्यादा प्रासंगिक है मानवता एवं मानव–समाज को पीड़ा के लिए। इस आतंकवाद की सीधी कार्यवाही हिन्दुस्तान के जमीं में 'कश्मीर–समस्या' के नाम से जानी जाती है।

सवाल है कि यह कश्मीर–समस्या क्या केवल भौगोलिक समस्या हैं, या सांस्कृतिक भी? इतिहास इस प्रश्न पर गवाही तो देता है, किन्तु फैसले नहीं सुनाता। यह नहीं कहता कि वहाँ की लड़ाई जमीन और जायदाद की नहीं, जनता और उसके बीच वैमनस्य की है। सवाल कश्मीर समस्या का हो या भारत की एकता, अखंडता या सौहार्द की सुरक्षा का यह प्रश्न अत्यध्कि महत्वपूर्ण है कि भारतीय जब सिंधी, पंजाबी, बंगाली, मराठी, तमिल, उड़िया, बिहारी, गुजराती, मद्रासी आदि होते हैं, तो उनकी वैमनस्यता राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए उस हद तक खतरा क्यूं नहीं बनती जिस तरह कश्मीरी या मुसलमानों के बीच होने वाली वैमनस्यता? यह एक यक्ष प्रश्न है। इस प्रश्न के परिप्रेक्ष्य में हमें अपे देश के स्वतंत्रताकालीन इतिहास का सर्वेक्षण करना होगा। हमने पाया है कि इतिहास ऐसे संदर्भों पर वैज्ञानिक व्याख्यान देता है, जैसे–देश का बंटवारा हो गया, जान–माल की क्षति हुई, लोग बेघर हो गए दोनों एक–दूसरे से लड़ने लगे.....आदि.....आदि। इतिहास के इन प्रमाणिक व्याख्यानों से स्थितियों का अभिज्ञान होता है, विपत्तियों की मौन पीड़ा का नहीं। यदि उन विपत्तियों पर शोध करना है, तो हमें तत्कालीन विषय पर आधारित साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन, मनन और विवेचन करना होगा। यह देखना होगा कि उन विपत्तियों, हिन्दु–मुस्लिम वैमनस्यता, मानवता की नृशंस हत्या और व्यथाओं की पीड़ा हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं को किस हद तक प्रभावित कर रही थीं? कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है और अरस्तु ने कहा है कि इतिहास विशिष्ट व्यक्तियों के कार्यों तथा अनुभवों का विवरण है।''[2] ऐसे में उन साहित्यकारों एवं कृतियों का पुर्नअध्ययन प्रासंगिक होगा, जहाँ भारत–विभाजन की त्रासदगाथा का कल्पित इतिहास संकलित है।

हमारे देश में सांप्रदायिक समस्या का सीधा संबंध मुसलमान जाति से रहा है और पुनः इसका प्रभाव सिक्ख जातियों में भी देखा गया है। किन्तु विस्मित करने वाला सच यह है कि मुस्लिम लेखक राही मासूम रजा और सिंधी लेखक बलवंत सिंह की रचना क्रमशः 'आधा गांव' और 'कालेकोस' में सांप्रदायिक हिंसा के बीच सांप्रदायिक सौहार्द की झलक स्पष्ट देखने को मिलती है। ''हम नहीं जानेवाले हैं कहीं। जायें वे लोग जिन्हें हम बैल

से शरम आती है। हम त किसान हैं तन्नु भाई। जहाँ हमारा खेत हमारी आधी जमीं, वहाँ हम।''[3] इसी प्रकार जब हम विभाजन के पूर्व की घटनाओं का चित्रण करने वाली कृति 'कालेकोस' विभाजनकालीन घटनाओं का चित्रण करने वाली कृति झूठा सच (1958–1960) और 'लौटे हुए मुसाफिर'(1963) क्रमशः यशपाल तथा कमलेष्वर की ऐतिहासिक रचना है।

विभाजनोपरांत घटनाओं का बेबाक वर्णन करने वाली कृति जुलूस–फर्णीश्वर नाथ रेणू, आधा–गांव (1966) को पढ़ते हैं तो वहां भी नफरत के परिणाम को देखकर क्षोभ एवं दुख प्रकट करने वाली आमलोगों की मानसिकता का पता चलता है।

सांप्रदायिक हिंसा एवं मानवता की हत्या का नृशंस चित्रण भीष्म साहनी जी के सुविख्यात लघु–उपन्यास तमस (1973) में तो सजीव हो उठता है। इस उपन्यास में स्पष्टतः शब्दों में कहा गया है कि तनावपूर्ण माहौल का निर्माण धार्मिक उन्माद और सांप्रदायिक दुष्प्रचार का परिणाम होता है। एक तरह से यह उपन्यास हमें वर्तमान मौजुदा हालात में संकेत एवं निर्देश देता हुआ प्रतित होता है। हमें आगाह कराता है कि यदि हमने सांप्रदायिक सद्भावना कामय नहीं रखी तो एकबार फिर 'तमस' का दूसरा अध्याय लिखा जाएगा। इसी प्रकार यशपाल जी की विश्व प्रसिद्ध रचना 'झुठा सच' का शीर्षक ही भारत हिन्दू और मुसलमान भाइयों के बीच की दूरी और देश के बंटवारे की झुठी एवं सायास रची गई मजबूरी के सच को झूठ करार करती है। 'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य' नाम से दो खण्डों में लिखी गई यह रचना देश की एकता के टुकड़े किये जाने के कारणों एवं परिणामों की कल्पना प्रमाणिक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करती है। इस रचना में लिखा गया है कि– ''भारत के मजदूर तथा जनता यह कभी नहीं चाहती थी कि भारत के दो टुकड़े किये जाएं। उच्च पूंजीपति वर्ग और सामंत वर्ग के लोग राजसत्ता को पाने के लिए तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए कोशिश कर रहे थे कि भारत का बंटबारा हो जाए।''[4]

इन दो पंक्तियों का व्याख्यान समस्त स्रोत दायिक दुर्भावना के मानस पटल पर सांप्रदायिक सद्भाव की प्रेरणा का द्योतक है। दो पंक्तियों का यह कथ्य सांप्रदायिक सौहार्द्र की मानो 'गीता' हो। यह सत्य की डंका पीटते हुए नजर आते हैं कि जब–जब भारतीयों के बीच सौहार्द्र बिगड़ता है, तब–तब इसके कारणों का बीज सत्ता एवं शासन की लालसा में छिपी होती है। एक सामान्य मानवी जो इस वैविध्य पूर्ण देश का निवासी है; ने विभाजन को कभी सही नहीं मानता।

अमृत राय ने भी अपनी कृति 'बीज' में लिखा है कि ''सांप्रदायिक दंगों की जो आग बंटवारे के दौरान लगी थी उसके प्रभाव आज भी देखने को मिलते हैं।''[5] मालूम पड़ता है कि यह बात वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कही जा रही है।

निष्कर्ष

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत की एकता और अखण्डता की संस्कृति के समान भारत की राष्ट्रीय भाषा हिन्दी के साहित्य में भी सांप्रदायिक सौहार्द की अमृत है। आवश्यकता इस बात की है कि हम समुद्र–मंथन की तरह विचार मंथन के द्वारा इस अमृत को निकाल पायें। कहा भी गया है कि साहित्य वह है 'जिमें सबका हित हो।' लार्ड मैकाले के अंग्रेजी–साहित्य की तरह सिर्फ मिल्टन का काव्य नहीं।[6]

अंत में साम्प्रदायिक सौहार्द्र के कारण एवं इसकी वर्तमान समय में आवश्यकता को रेखांकित करने के लिए हम 'रामानंद सागर की रचना' और 'इंसान मर गया' की इस एक पंक्ति को प्रकाश में लाना चाहें तो कि ''वर्षों की गुलामी के बाद स्वतंत्र हो रहे भारत ने बहुत सी कुर्बानियां दी, जिनमें सबसे बहुमूल्य वस्तु है इंसानियत।''[7]

संदर्भ ग्रथ सूची

1. *Mortin H. Newmeyar, Social Problems and the Changing Society, P.-16.*
2. *परमानंद श्रीवास्तव : उपन्यास का पुनर्जन्म, पृ0–114, 268, वाणी प्रकाशन।*
3. *सं0–गोविद चन्द्र पाण्डेय; इतिहास स्वरूप एवं सिद्धांत, पृ0–143,*
4. *राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, प्रथम संस्करण, 1973.*
5. *यशपाल : झूठा सत्य, पृ0–21.*
6. *अमृतराय : बीज, पृ0–330–331.*
7. *लार्ड मैकाले ने इस आशय की चर्चा 1833 के चार्टर में उद्धृत अंग्रेजी साहित्य से की थी।*
8. *हरिकृष्ण रावत : समाज शास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली।*
9. *समाज शास्त्र कोश।*